



ISSN: 2249-894X  
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)  
UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514  
VOLUME - 8 | ISSUE - 8 | MAY - 2019



## प्राचीन हिन्दू कालीन न्याय व्यवस्था

सुनिता तिवारी

असिस्टेंट प्रोफेसर , स्कूल ऑफ टुरिज्म  
आई.पी.एस. एकेडमी, इन्दौर (म.प्र.)

### प्रस्तावना :-

प्राचीन धर्म ग्रंथों में विधि और न्याय प्रशासन के विषय में पर्याप्त जानकारी मिलती है प्राचीन धार्मिक ग्रंथ ही इतिहास जानने के मुख्य स्रोत भी है इन धार्मिक ग्रंथों (वेद, पुराण, उपनिषद, स्मृति आदि) में धर्म को सबसे अधिक महत्व प्राप्त था इसी कारण अधिकांश न्याय एवं विधि धार्मिक नियमों में ही संकलित थे। यही कारण है कि हमारे प्राचीन वेद, पुराणों, शास्त्रों, उपनिषदों, स्मृति, ब्राह्मण ग्रंथ आदि को न्याय व्यवस्था का आधार सूत्र मानते हैं।

प्राचीन काल में विधि अथवा न्याय प्रशासन को धर्म का ही एक अभिन्न अंग माना गया है इसीलिये विधि के अनुपालन में नैतिकता (Morality) पर अधिक बल दिया गया है। भारत के हिन्दू शासन काल में न्याय एवं दण्ड व्यवस्था का पूरा उत्तरदायित्व शासक पर होता था क्योंकि इस काल में आम धारणा थी कि राजा ईश्वर का प्रतिनिधि है तथा उसके द्वारा किया गया हर कार्य चाहे वह न्याय ही क्यों न हो ईश्वरीय इच्छा के अनुसार होगा व ईश्वर कभी गलत नहीं होता। उसके आदेशों का पालन किया जाना चाहिये। इस काल में प्रायः लोग अपराधों से दूर रहते थे उन्हें बचपन से ही सिखाया जाता था कि बुरे कार्य करगें तो पाप लगेगा या नर्क में जाएंगे परिणाम स्वरूप अधिक अपराध नहीं होते थे। जो व्यक्ति दुराचरण करते थे उन्हें कठोर दण्ड मिलता था। तत्कालीन

न्याय प्रणाली मुख्यतः “कर्तव्य” की भावना पर आधारित थी। “कर्तव्य” का पालन न करने पर दण्डित किया जाना था। प्राचीन भारत में प्रचलित रीतियाँ, रूढ़ियों तथा परम्पराओं को, हिन्दू कालीन विधि में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था उन्हें धर्म के प्रमुख स्रोतों के रूप में मान्यता दी गई है। न्यायालयों में भी रूढ़ियों को महत्व को विधि से बढ़कर माना है। प्राचीन भारत की विधि व्यवस्था में मीमांसा शास्त्रों का भी महत्वपूर्ण स्थान है इनमें श्रुतियों के विवादस्पद अंशों को समस्या के रूप में प्रस्तुत कर उसका निष्कर्ष उत्तर के रूप में दिया गया है इस प्रश्नोत्तर पद्धति में व्याख्या (Interpretation) के अनेक सिद्धांत दिये गये हैं। हिन्दू विधि की अनेक समस्याओं का स्पष्टीकरण मीमांसकों द्वारा लिखे गये सूत्रों में उपलब्ध है। मीमांसकों

में “कुमारिल भट्ट”, माधवाचार्य तथा भगवान उपवर्ष प्रमुख हैं। मनु के अनुसार श्रुती तथा स्मृतियाँ भी प्राचीन कालीन न्याय प्रणाली के प्रमुख प्रामाणिक स्रोत थे। प्राचीन भारत में एक निश्चित विधि तथा न्याय प्रणाली प्रचलित थी जिसमें विभिन्न अपराधों की परिभाषा तथा व्याख्या स्पष्ट रूप से की गई थी। दण्ड देने वाले अधिकारियों की अर्हताओं और कर्तव्यों का उल्लेख विस्तारपूर्वक किया गया था। अपराधियों को उनके अपराध के अनुसार दण्ड दिया जाता था। साक्ष्य, उत्तराधिकार, दाय्याधिकार आदि सम्बंधी नियम निश्चित एवं सुस्पष्ट थे। अभियोगी का परीक्षण उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर किया जाता था। विचारक काल (Trial Period) में वह किसी ब्राह्मण या पण्डित का परामर्श ले सकता था।

(इस समय विधि सम्बंधी प्रावधान धर्मशास्त्रों तथा धर्मग्रंथों में दिये गये होने के कारण ब्राह्मण या पण्डित को उनका ज्ञाता माना जाता था यही कारण है कि उन्हें न्यायिक संस्थओं में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था) ।

पक्षकारों को अपना पक्ष 'वकील' के माध्यम से प्रस्तुत करने की सुविधा उपलब्ध थी परन्तु हत्या, डकैती, जारता, शील भंग, मिथ्या साक्ष्य आदि जैसे गम्भीर अपराधों के लिये अभियुक्त को व्यक्तिगत रूप से न्यायालय में उपस्थित होकर अपना पक्ष प्रस्तुत करना जरूरी होता था।

मिथ्या साक्ष्य (झुठे सबूत) के लिये दोषी व्यक्ति को कठोर दण्ड दिया जाता था। गवाह के रूप में न्यायालय में उपस्थित ब्राह्मणों के प्रति उदारनीति अपनाई जाती थी क्योंकि प्राचीन काल में ब्राह्मणों का उच्च स्थान था व उनके सदाचरण (सद्आचरण) के विषय में कोई शंका नहीं की जा सकती थी।

प्राचीन हिन्दू कालीन न्याय व्यवस्था में अग्नि परीक्षा (Ordeals) का विशेष महत्व था अपराधियों के दोषी होने या निर्दोष सिद्ध करने के लिये अग्नि परीक्षण किया जाता था। अग्नि परीक्षा के अनेक रूप थे – जिनमें अग्नि अथवा पानी का उपयोग विशेष प्रकार से किया जाता था। आग में तपी हुई गरम लोहे की छड़ हाथ में थामने को कहा जाता था, अथवा जलती आग पर कुछ कदम नंगे पैर चलने के लिये बाध्य किया जाता था ऐसा करने का प्रयोजन यह होता था कि यदि वह दोषी है तो कबूल कर लेगा (डरकर) जो सच्चा है वह चलने को तैयार रहेगा।

प्राचीन हिन्दू कालीन न्याय व्यवस्था में दण्ड सामान्य रूप से प्रचलित था कुछ अपराधों के लिये दोषी व्यक्ति को जाति या समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता था, जिससे उसे मानसिक यातना हो तथा वह आत्मग्लानि का अनुभव करें। गम्भीर अपराधों में अंग भंग कर दिये जाते थे ताकि समाज में अन्य कोई ऐसा अपराध ना करे।

शास्त्रों में जारता सम्बंधी अपराध के लिये विस्तृत उपबंध दिये गये हैं। पराई स्त्री के साथ गलत कार्य करने पर, अशिष्ट वार्तालाप करने आदि पर सभी जारता के रूप माने जाते थे तथा इसके लिये अर्धदण्ड दिया जाता था व शील भंग (Rape) करने पर अंग भंग का दण्ड दिया जाता था, अपराधी की सम्पत्ति जप्त कर ली जाती थी, व कई बार उसके सिर पर काला रंग लगाकर सड़को पर घुमाया जाता था ताकि ऐसे अपराधी से लोग घृणा करें। कभी कभी दोषी लोगों को जलाकर मारने का भी दण्ड दिया जाता था।

मनुस्मृति से हमें ज्ञात होता है कि प्राचीन हिन्दू कालीन न्याय व्यवस्था में व्यावहारिक (Civil) तथा अपराधिक (Criminal) वादों को निपटाने के लिये अलग अलग न्यायालय विद्यमान थे जिनके निर्णय पर राजधानी स्थित शासक की न्यायसभा में अपील प्रस्तुत की जा सकती थी।

अनेक मामलों में पंचों की मध्यस्थता (Arbitration) से निर्णय किया जाता था इस प्रकार मध्यस्थता से मामलों को निपटाने के लिये पंचों को न्यूनतम संख्या पाँच हुआ करती थी।

### संदर्भ –

हेलहेड्स ऑन जेन्टू लॉ ( 1776 संस्करण) लंदन । यह संहिता मनु, याज्ञवल्क्य, जीमूतवाहन, शूलपणि, पारिजात आदि की कृतियों पर आधारित है।

डॉ. पेंडसे एस.एन – Oaths and ordeals in Dharmasastras (1985) M.S. University- Vadodara Publication PP 296

एल्फिंस्टन – History of India